मेवाड़ की प्राचीन जैन चित्रांकन-परम्परा

□ डॉ० राधाकृष्ण वशिष्ठ
सहायक आचार्य,
चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भिक स्वरूप पश्चिमी भारतीय चित्र शैली से बना है। इसके नामकरण हेतु अब तक अनेक प्रयास किये गये हैं। डॉ० कुमारस्वामी ने इसे जैन एवं गुजराती चित्रशैली कहा है। नोर्मन ब्राउन इसे श्वेताम्बर जैन तथा पश्चिमी भारतीय शैली कहते हैं। रायकृष्णदास इसे पश्चिमी भारतीय शैली व अपभ्रंश शैली से सम्बोधित करते हैं तो बेसिलग्रे इसे पश्चिमी भारतीय शैली की अभिधा प्रदान करते हैं। कई विद्वानों की यह भी मान्यता है कि इस शैली के प्रारम्भिक उदाहरण एलोरा, मदनपुर आदि के भित्तिचित्रों में भी मिलते हैं। आठवीं सदी के खरतरगच्छ के श्री जिनदत्तसूरि ने राजस्थान में विभिन्न कलाओं को बहुत अधिक संरक्षण प्रदान किया। उन्होंने इस उद्देश्य से कई ग्रन्थ भी लिखवाये। मेवाड़ भी इससे अछूता नहीं रहा। यहाँ भी अनेक सचित्र व कलापूर्ण जैन ग्रन्थ लिखे गये। यही नहीं, यहाँ पर जैन शिल्प-परम्परा भी काफी विकसित थी। चित्तौड़गढ़ के दिगम्बर जैन स्मारक (१३०० ई०) एवं महावीर मन्दिर की मूर्तिकला में जैन शिल्प-परम्परा के उत्कृष्ट रूप देखने को मिलते हैं। इन शिल्प कृतियों के देखने पर हम प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला के विभिन्न तत्त्वों का सीधा सम्बन्ध पाते हैं। मेवाड़ में चित्रकला के विकास क्रम को समझने के लिए यहाँ पर लिखे गये जैन ग्रन्थ भी काफी उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं। हरिभद्रसूरि (७००-७७८ ई०) द्वारा चित्तौड़गढ़ में लिखित 'समराइच्चकहा'[1] में तो चित्रकला सम्बन्धी बहुत सी महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है। सिद्धर्षिकृत 'उपमिति भवप्रपंच कथा' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। समराइच्चकहा में समरादित्य के दूसरे भव में सिंहकुमार और कुसुमावली के प्रेम-प्रसंग में चित्रकला सम्बन्धी कई शब्दों का उल्लेख है। चित्र बनाने एवं रंगों को रचने हेतु रंग पेटिका 'वण्णिया समुगयं' (वर्णिक समुद्रकं) तथा चित्रपट के लिए 'चित्तवट्टिय' (चित्रपट्टिका) शब्दों का प्रयोग किया गया है।[2] इसमें राजकुमारी द्वारा हंस और हंसिनियों के चित्र बनाकर[3] दर्शनोत्सुक हंसिनी को चित्रित किये जाने का उल्लेख है। इसी भाव को अंकित करते हुए कुसमावली की दासी मदनलेखा ने एक द्विपदी छंद बनाकर चित्र पर लिख देने[4] तथा उस चित्रपट्ट को राजकुमार के पास दिखाने जाने का प्रसंग है। 'पेसिया रायधूयाए' जैसे मार्मिक उल्लेख हैं। स्वयं राजकुमार द्वारा हंस का चित्र बनाकर राजकुमारी को प्रेषित करने आदि के संदर्भ इसमें मिलते हैं। चित्तौड़ की शिल्प कृतियों में ऐसी आकृतियों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

इस ग्रन्थ में आठवें भव में ऐसे ही व्यापक प्रसंग हैं जो शंखपुर के राजा की कन्या रत्नावली से सम्बन्धित

---

१. हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा, हर्मन जेकोबी द्वारा सम्पादित (कलकत्ता, १९२६)

२. तओ घेत्तूण एयं चित्तवट्टियं पुव्ववणियं च पाहुड गया माहवीलया मण्डवं मयणलेहा।
—समराइच्च-कहा, पृ० ७२

३. ता आलिहउ एत्थ सामिणी समाणवरहंसयविउत्तं तद्दंसणुसुयं च रायहंसियंति। तओ मुणियमयणलेहाभिप्पायाए ईसि विहसिउण आलिहिया तीए जहोवइट्ठा रायहंसिया। —वही पृ० ७१

४. मयणलेहाए वि य अवत्थासूयगं से लिहियं इमं उवरि दुवईखण्ड। —वही पृ० ७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। राजकन्या अत्यन्त रूपवती थी, उसके लिए उचित वर देखने के लिए कई व्यक्ति भेजे गये। उनको यह भी आदेश दिया कि वे सुयोग्य व्यक्ति का चित्र बनाकर लावें। इस कार्य के लिए अयोध्या की ओर भूषण एवं चित्रमति नाम के चित्रकारों को भेजा गया।[1] उन्होंने राजकुमार गुणचन्द्र को धनुष चलाते हुए देखा। उसका चित्र एक वार देखने पर नहीं बना सके[2] तो राजकुमार के सामने वे स्वयं को चित्रकार बताते हुए पहुँचे। उन्होंने राजकुमारी का एक चित्र भी राजकुमार के सम्मुख प्रस्तुत किया। गुणचन्द्र ने उसको देखकर कहा कि यह चित्र[3] आँखों को सुख देने वाला है। तुम सच्चे अर्थ में चित्रकार हो तभी ऐसा चित्र बना पाये। राजकुमारी के विशाल नेत्र दाहिने हाथ में रम्य सयवत्ता अंकित था।[4] चित्र स्वयं अपने मूल रूप को प्रतिध्वनित कर रहा था। राजकुमार ने कहा कि चित्र इसलिए भी सुन्दर बन पड़ा कि राजकुमारी स्वयं सुन्दर है। राजकुमार ने दोनों ही चित्रकारों को, चित्र से प्रभावित होकर, एक लाख दीनार (दोणर लक्खो) पुरस्कार के रूप में दिये। चित्र में रेखान्यास[5] तक राजकुमारी की सुन्दरता के कारण छिप गये। राजकुमार स्वयं भी अच्छा चित्रकार था। अतः उसने तूलिका की सहायता से रंगों का मिश्रण करके अपने भावों के अनुरूप विद्याधर युगल का चित्र बनाया।[6] राजकुमारी के चित्र में भी उसने कुछ पद लिखे। कालान्तर में दोनों का विवाह भी हो गया। इस प्रकार सारे प्रसंग में जो चित्रकला का वर्णन आता है. वह पारम्परिक होते हुए भी अपनी स्थानीय विशेषताओं के लिए हुए है। साथ ही मेवाड़ की तत्कालीन चित्रकला की विकास परम्परा दर्शाता है किन्तु इतना होते हुए भी मेवाड़ में चित्रकला का प्रामाणिक क्रम १२२९ ई० से बनता है, जिनमें उत्कीर्ण रेखांकन एवं सचित्र ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

१—शिलोत्कीर्ण रेखांकन समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर, चित्तौड़, वि० सं० १२८६ (१२२९ ई०)
२—श्रावक प्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि, आघाटपुर, वि० सं० १३१७ (१२६० ई०)
३—शिलोत्कीर्ण रेखांकन, गंगरार, वि० सं० १३७५-७६ (१३१७-१८ ई०)
४—कल्पसूत्र, सोमेश्वर ग्राम गोड़वाड़, वि० सं० १४७५ (१४१८ ई०)
५—सुपासनाहचरियं, देलवाड़ा, वि० सं० १४८० (१४२३ ई०)
६—ज्ञानार्णव, देलवाड़ा, वि० सं० १४८५ (१४२८ ई०)
७—'रसिकाष्टक' भीखम द्वारा रचित वि० सं० १४९२ (१४३५ ई०)

---

१. जंपिय चित्तमइणा। अरे भूसणय, दिट्ठं तए अच्छरियं।
तेण भणियं। सुट्ठु दिट्ठं, किं तु विसण्णो अहं। —वही, पृ० ६०६

२. सव्वहा अणुरूवो एस रायधूयाए। किं तु न तोर ए एयस्स संपुणपडिच्छन्दयालिहणं विसेसओ सइंदसणंमि। —वही, पृ० ६०६

३. अह तं दट्ठूण पडं पोइ भरिज्जन्तलोयणजुएण।
भणियं गुणचन्देणं अहो कलालवगुणो तुब्भं॥
जइ एस कलाए लवो ता संपुणा उ केरिसो होई।
सुन्दर असंभवो च्चिय अओ वरं चित्तयम्मास्स॥ —वही, पृ० ६०८

४. एसा विसालनयणा दाहिणकरधरियरम्मसयवत्ता। —वही, पृ० ६०८

५. एवंविहो गुरूवो रेहानासो न दिट्ठो त्ति।
जइवि य रेहानासो पत्तेयं होई सुन्दरो कहवि॥ —वही, पृ० ६०८

६. आलिहिओ कुमारेण सुविहत्तुज्जलेणं वणय कम्मेण अलरिकज्जमाणेहिं गुलियावएहिं अणुरूवाए सुहमरेहाए पयडदंसणेण निन्नुन्नयविभाएणं विसुद्धाए वट्ठणाए उचिएणं भूसण। कलावेणं अहिणवनेहसुयत्तणेणं परोप्परं हासुप्फुल्लबद्धदिट्ठो आरूढ पेम्मतणेणं लङ्घओचियनिवेसो विज्जाहर संघाडओ त्ति। —वही, पृ० ६१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तौड़ के समिद्धेश्वर मन्दिर के खम्भों पर शिलालेखों सहित १२२९ ई० के उत्कीर्ण[1] रेखांकन प्राप्त हुए हैं, उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। ये चित्र तत्कालीन सूत्रधार शिल्पियों के हैं और उक्त जैन या अपभ्रंश शैली में प्रथम खम्भे पर सूत्रधार आल पुत्र माउकी तथा दूसरे खम्भे पर सूत्रधार श्रीधर के उत्कीर्ण रेखांकन खड़े एवं हाथ जोड़े दिखाये गये हैं। इनसे स्पष्ट है कि ये शिल्पी तत्कालीन जैन शैली की सभी विधाओं के अच्छे ज्ञाता थे। तत्कालीन चित्रों की भाँति इन्होंने एक आँख बाहर निकलते हुए सवा चश्मी चेहरा, वस्त्र लहराते हुए, नुकीली नाक एवं दाढ़ी आदि का रेखांकन किया है, जो मेवाड़ भूखण्ड में कला का प्रामाणिक स्वरूप बनाने में समर्थ हुए। इन शिलोत्कीर्ण चित्रों के ऊपर तिथि युक्त पंक्तियाँ चित्रों की पुष्टि में सहायक हैं।

मेवाड़ भूखण्ड गुजरात की सीमाओं से लगा हुआ है, यहाँ प्रारम्भ से ही जैन धर्मावलम्बियों के कई केन्द्र रहे हैं। कई जैन मन्दिर बने तथा ग्रन्थ लिखे गये। इन केन्द्रों पर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सचित्र ग्रन्थ मिले हैं। महाराणा जैत्रसिंह के शासनकाल में कई ग्रन्थ लिखे गये। इनमें ओघनिर्युक्ति वि० सं० १२८४ मुख्य है। चित्तौड़ के एक जैन श्रेष्ठी राल्हा ने मालवा में जाकर 'कर्मविपाक' वि० सं० १२९५ में लिखाया। इसकी प्रशस्ति में नलकच्छपुर नाम स्पष्ट है जिसे नालछा कहते हैं। चित्तौड़ में 'पाक्षिकवृत्ति' की वि० सं० १३०९ (१२५२ ई०) में प्रतिलिपि की गई, जो जैसलमेर में संग्रहीत है। इसमें श्रावक प्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि ही सचित्र है।[2]

इसके चित्रों में मेवाड़ की प्राचीन परम्परा एवं बाद में आने वाली चित्रण विशेषताओं का उचित समावेश है। श्रावक प्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि ग्रन्थ में चित्र के दायें-बायें लिपि तथा मध्य भाग में चित्र बने हैं।[3] इसकी पुष्पिका में आलेख चित्रों के साथ ही हैं। इस ग्रंथ में कुल ६ चित्र हैं, जो बोस्टन संग्रहालय अमेरिका में सुरक्षित हैं। इन चित्रों की विशेषताएँ तत्कालीन चित्रण पद्धति तथा परम्परा के अनुसार हैं। नारी चित्रों एवं अलंकरण का इनमें आकर्षक संयोग है। उक्त शिलोत्कीर्ण एवं सचित्र ग्रन्थ में सवा चश्म चेहरे, गरुड़ नासिका, परवल वाली आँख, घुमावदार लम्बी उंगलियाँ, लाल-पीले रंग का प्राचुर्य, गुंडीदार जन समुदाय, चौकड़ीदार अलंकरण का बाहुल्य, चेहरों की जकड़न आदि महत्त्वपूर्ण है। इन चित्रों में रंग योजना भी चमकीली है। पीला, हरा व लाल रंग का मुख्य प्रयोग मिलता है। रंगों, रेखाओं व स्थान के उचित संयोजन का यह उत्कृष्ट नमूना है, जिसमें गतिपूर्ण रेखाओं व ज्यामितीय सरल रूपों का प्रयोग है। ये संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अवतरित होते रहे। साथ ही इन चित्रकारों ने सामाजिक तत्त्वों, रहन-सहन आदि का अच्छा अंकन किया है, जिस पर साराभाई नवाब ने लिखा[4] है कि तेरहवीं सदी में मेवाड़ की स्त्रियाँ कैसा पहनावा पहनती थीं, यह इन चित्रों में अंकित है। इस पंक्ति से इस महत्त्वपूर्ण सचित्र ग्रंथ में सामाजिक वेषभूषा के अंकन की कार्यकुशलता भली भाँति सिद्ध हो जाती है।

गंगरार ग्राम में मिले कुछ शिलोत्कीर्ण रेखाचित्र विक्रम संवत् (१३७५-१३७६) के हैं।[5] इनमें दिगम्बर साधुओं की तीन आकृतियाँ हैं तथा उनके नीचे शिलालेख हैं। इन आकृतियों की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। ये

---

१. संवत् १२८६ वर्षे श्री समधेसरदेव प्रणमते सुत्र ( ) आल पुत्र माउको न एता। संवत् १२८६ वर्षे श्रावण सु० रखो श्री समधेसुरदेव नृसव (?) श्रीधर पुत्र जयतकः सदा प्रणमति।
—शोध पत्रिका, वर्ष २५, अंक १, पृ० ५३-५४।

२. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १६६-७०।

३. संवत् १३१७ वर्षे माह सुदि १४ आदित्य दिने श्री मेदाघाट दुर्गे महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक उमापतिवर लब्धप्रौढ़ प्रतापभूप-समलंकृत श्री तेजसिंहदेव कल्याण विजयराज्ये तत्पादपद्मनाभ जीविनि महामात्य श्री समुदधरे मुद्रा व्यापार परिपंथयति श्री मेदाघाट वास्तव्य पं० रामचन्द्र शिष्येण कमलचन्द्रेण पुस्तिकाव्य लेखि।
—श्रावक प्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि, बोस्टन संग्रहालय, अमेरिका

४. शोध पत्रिका, वर्ष ५, अंक ३, पृ० ४६

५. शोध पत्रिका, वर्ष २७, अंक ४, पृ० ४१-४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकृतियाँ एक चश्मी न ही हैं, नहीं इनमें अपभ्रंश शैली जैसे वस्त्र हैं। अतः यह मानना होगा कि यह वहाँ की स्थानीय शैली के अनुरूप साधुओं की आकृतियाँ रही होंगी।

अलाउद्दीन के आक्रमण के पश्चात् उत्तरी भारत में जो विकास हुआ, उनमें गुजरात व मालवा के नये राज्यों की स्थापना उल्लेखनीय है। जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, मेवाड़ के शासक भी अलाउद्दीन के आक्रमण के बाद अधिक शक्तिसम्पन्न हुए। महाराणा लाखा, मोकल एवं कुम्भा का काल आन्तरिक शान्ति का काल था। इस काल में कई महत्त्वपूर्ण कलाकृतियों का निर्माण हुआ। मेवाड़ की चित्रकला का दूसरा सचित्र ग्रंथ कल्पसूत्र वि० सं० १४७५ (१४१८ ई०) है, जो सोमेश्वर ग्राम गोड़वाड़ में अंकित किया गया। यह ग्रंथ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में सुरक्षित है। ७९ पत्रों की इस प्रति में ७३ पत्रों तक तो कल्पसूत्र एवं कालिकाचार्य कथा ८८ श्लोकों की है। इस कथा में ३ चित्र हैं। कल्पसूत्र के १६ पृष्ठों पर चित्र हैं। इनमें से पत्रांक ९ और ३२ के बोर्डर पर भी लघु चित्र हैं। पत्रांक २६ में दो चित्र है। चित्रों की पृष्ठभूमि में लाल, हल्दिया, बैंगनी व मूंगे रंग का प्रयोग है तथा ग्रन्थ के अन्त में लिखी पुष्पिका से तत्कालीन कला-परम्परा की भी उचित पुष्टि होती है।[1] ज्ञातव्य है कि उस काल में गोड़वाड़ मेवाड़ का ही भाग था, जो महाराणा अरिसिंह (१७६१-१७७३) ई० के राज्यकाल में मारवाड़ को दे दिया गया। इसके अन्तिम लेख से स्पष्ट है कि जैसलमेर में जयसुन्दर शिष्य तिलकरंग की पंचमी तप के उद्यापन में यह प्रति भेंट की गई थी।

मेवाड़ की चित्रकला का अन्य सचित्र ग्रंथ महाराणा मोकल के राज्यकाल (१४२१-१४३३ ई०) का देलवाड़ा में चित्रित सुपासनाहचरियं वि० सं १४८० है। यह ग्रंथ सैंतीस चित्रों का एक अनुपम चित्र सम्पुट है जो पाटण के संग्रहालय में सुरक्षित है।[2] यह ग्रंथ देलवाड़ा में मुनि हीरानन्द द्वारा अंकित किया गया। मुनि हीरानन्द द्वारा चित्रित यह ग्रंथ मेवाड़ की चित्रण-परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, जो इससे पूर्व श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि की कलात्मक विशेषताओं से एक कदम आगे है। इनके द्वारा पृष्ठभूमि का अंकन हीगलू के लाल रंग से किया गया है। स्त्रियों का लंहगा नीला, कंचुकी हरी, ओढ़नी हल्के गुलाबी रंग से तथा जैन साधुओं के परिधान श्वेत और पात्र श्याम रंग में हैं। देलवाड़ा में ही महाराणा मोकल के राज्यकाल का एक अन्य सचित्र ग्रंथ 'ज्ञानार्णव' वि० सं० १४८५ (१४२७ ई०)[3] नेमिनाथ मन्दिर में लिखा गया दिगम्बर जैन ग्रथ है। यह लालभाई दलपतभाई ज्ञान भण्डार अहमदाबाद में सुरक्षित है।

इस भूखण्ड का एक और सचित्र ग्रंथ रसिकाष्टक वि० सं० १४९२ हैं, जो महाराणा कुम्भा के राज्यकाल का एक उल्लेखनीय ग्रंथ है। रसिकाष्टक नामक ग्रंथ भीखम द्वारा अंकित किया गया था जो पुष्पिका से भी स्पष्ट है[4]। इस

---

१. संवत् १४७५ वर्षे चैत्र सुदि प्रतिपदा तिथौ। निशानाथ दिने श्रीमत मेदपाट देशे सोमेश्वर ग्रामे अश्विनो नक्षत्रे मेष राशि स्थिते चन्द्रे। विषकायोगे श्रीमत् चित्रावाल गच्छे श्री वीरेचन्द्रसूरि शिष्येण धनसारेणकल्प पुस्तिका आत्मवाचनार्थ लिखापित लिषिता, वाचनाचार्येण शीलपुन्दरेण श्री श्री श्री शुभं भवतु।

—अगरचन्द नाहटा, आकृति (रा० ल० अं०) जुलाई १९७६, वर्ष ११, अंक १, पृ० ११-१४

२. मुनि श्री विजयवल्लभसूरि स्मारक स्मृति ग्रंथ, बम्बई १९५६, पृ० १७६—संवत् १४८० वर्षे शाके १३४५ प्रवर्तमाने ज्येष्ठ वदि १० शुक्रे ववकरणे मेदपाट देशे देवकुलवाटके राजाधिराज राणा मोकल विजय राज्ये श्रीमद्बृहद-गच्छे मड्डाहडीय भट्टारक श्री हरिभद्रसूरि परिवार भूषण पं० भावचन्द्रस्य शिष्य लेशेन मुनि हीराणंदेन लिलिखेरे।

—साराभाई मणिलाल नवाब अहमदाबाद, जैन चित्र कल्पद्रुम, १९५८, पृ० ३०

३. संवत् १४८५ वर्षे निज प्रताप प्रभाव पराकृत तरण तरणी मंडलात श्री महाराजाधिराज मोकलदेव राज्य प्रवर्तमानां श्री देवकुल वाटके। —ला० द० ज्ञ० भ० अहमदाबाद।

४. संवत् १४९२ वर्षे आषाढ़ सुदि गुरौ श्री मेदपाटे देशे श्री पं० भीकमचन्द रचित चित्र रसिकाष्टक समाप्त श्री कुम्भकर्ण आदेशात्।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ के छः श्रेष्ठ चित्र उपलब्ध हुए हैं, जिनमें विभिन्न ऋतुओं तथा पशुओं के गतिपूर्ण अंकन है जो तत्कालीन कला-परम्परा की अच्छी पुष्टि करते हैं। ये अगरचन्द नाहटा संग्रह बीकानेर में सुरक्षित हैं। महाराणा कुम्भा का काल कला का स्वर्ण युग था। स्वयं महाराणा कुम्भा जैन धर्म में आस्था रखता था। कुम्भा के काल में साहित्य सन्दर्भों में भी चित्रकला के उल्लेख मिलते हैं, उनमें 'सोमसौभाग्य काव्य' उल्लेखनीय है। उस समय मेवाड़ के देलवाड़ा[1] नगर में श्रेष्ठियों के मकानों में कई सुन्दर चित्र बने हुए थे। देलवाड़ा का सम्बन्ध उस काल में माण्डू, ईडर, गुजरात के पाटन, अहमदाबाद, दौलताबाद एवं जोनपुर आदि से होने के समकालीन साहित्यिक सन्दर्भ उपलब्ध हैं। जौनपुर से एक खरतर-गच्छ का विशाल संघ आया था, जिन्होंने काव्य सूत्र ग्रंथ लिखवाने की भी इच्छा व्यक्त की थी। इन सन्दर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मेवाड़ में देलवाड़ा कला व सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। देलवाड़ा से कुछ आलेखाकारों का जौनपुर में ग्रंथ लेखन हेतु जाना भी सम्भव है। मांडू के स्वर्ण कल्पसूत्र की प्रशस्ति के अनुसार श्रेष्ठी जसवीर जब मेवाड़ में आया तो महाराणा कुम्भा ने उसे तिलक लगाकर सम्मानित किया। इन राज्यों में जैन धर्म व कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई। व्यापारिक वर्ग ने तत्कालीन सुल्तानों से कई सुविधाएँ प्राप्त कर ली थीं। माण्डू के कल्पसूत्र की प्रशस्ति में श्रेष्ठी जसवीर का उल्लेख है, जिसने मेवाड़ में चित्तौड़, राणकपुर, देलवाड़ा कुम्भलगढ़, आबू, जीरापल्ली आदि स्थानों की यात्रा की थी और महाराणा कुम्भा ने इन श्रेष्ठियों को सम्मानित भी किया था। मेवाड़ से ऐसे कई साधु गुजरात व मालवा की यात्रा हेतु प्रस्थान करते रहते थे। मेवाड़ के देलवाड़ा में दक्षिण भारत के दौलताबाद व पूर्व के जौनपुर से कई श्रेष्ठियों के आने व ग्रंथ लिखाने के प्रसंगवश वर्णन हैं। अतएव यह स्पष्ट होता है कि मेवाड़ में पन्द्रहवीं सदी में सांस्कृतिक उत्थान बड़ी तेजी से हुआ। किन्तु मेवाड़ में इस काल की कृतियाँ कम मिलती हैं, इसका मुख्य कारण चित्तौड़ में दो बार जौहर का होना है। इन जौहरों में हजारों पुरुष मरे, कई नारियाँ जौहर में कूद पड़ीं। आक्रमणकारियों ने मन्दिरों, भवनों और ग्रंथ भण्डारों को आग लगा दी। इनका वर्णन पारसी तवारीखों में स्पष्टतः मिलता है। जिससे बड़ी संख्या में ग्रन्थों के नष्ट होने की पुष्टि होती है।

□□□□

१. रामवल्लभ सोमानी, महाराणा कुम्भा, पृ० ३३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org